International Journal of Sanskrit Research 2015; 1(4): 16-17

International Journal of Sanskrit Research

अनन्ता

ISSN: 2394-7519
IJSR 2015; 1(4): 16-17
© 2015 IJSR
www.sanskritjournal.com
Received: 27-03-2015
Accepted: 21-04-2015

दिलीप कुमार जायसवाल
शोध छात्र, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

Correspondence
दिलीप कुमार जायसवाल
शोध छात्र, संस्कृत विभाग दिल्ली विश्वविद्यालय

धीर एवं मूढ़ः उपनिषदों में वर्णित व्यक्तित्व–प्रकार

दिलीप कुमार जायसवाल

व्यक्तित्व–प्रकार आधुनिक मनोवैज्ञानिक अध्ययन का एक महत्वपूर्ण अंग है। मनोवैज्ञानिकों ने मानव–व्यक्तित्व को वर्गीकरण के अनेकानेक आधार माने हैं। जुंग ने मानव–व्यक्तित्व को अन्तर्मुखी और बहिर्मुखी इन दो प्रकारों में विभाजित किया है। अन्तर्मुखी व्यक्तित्व को संकोची एवं एकान्तप्रिय माना गया है, जबकि बहिर्मुखी व्यक्तित्व अपने तनाव के क्षणों को दूसरों में बाँटने वाले होते हैं तथा सामाजिक गतिविधियों में बढ़ चढ़कर भाग लेने वाले होते हैं।

भारतीय चिन्तन–परम्परा में पाये जाने वाला व्यक्तित्व–प्रकार सम्बन्धी विचार पाश्चात्य परम्परा की तुलना में अधिक तात्विक एवं सर्वांगीण है। सामान्यरूप से प्रकृति के तीन गुण–सत्त्व, रजस एवं तमस के आधार सात्त्विक, राजसिक एवं तामासिक व्यक्तित्व माने गए हैं। इस पत्र में हम उपनिषद् साहित्य के अनुशीलन से प्राप्त होने वाले धीर एवं मूढ़ की कोटि पर व्यक्तित्व प्रकार की दृष्टि से विचार करेंगे।

यह सर्वविदित है कि उपनिषदों में पराविद्या का उपदेश क्रान्तदृष्टा ऋषियों के द्वारा किया गया है। इनमें परम तत्व के स्वरूप पर विचार करते हुए जन्ममरणचक्र एवं त्रिविध दुःखों की आत्यन्तिक निवृत्तिरूप मुक्ति को मानव–जीवन का परम प्रयोजन बताया गया है। इस प्रकार उपनिषदों में जीवन मे विद्यमान बन्धन एवं मुक्ति की समस्या पर अत्यन्त व्यापक एवं गहन चिन्तन हुआ है। धीर एवं मूढ़ की जो संकल्पना यहाँ प्रस्तुत की गई है उसके आधार को भी हम बन्धन एवं मुक्ति दूसरे शब्दों में अज्ञान एवं ज्ञान के विचार में ही ढूंढ सकते हैं

इस क्रम में अब हम व्यक्तित्व प्रकार के रूप में मूढ़ की कोटि पर विचार करते हैं। सामान्य रूप से बन्धनग्रस्त अज्ञानी मनुष्य ही मूढ़ कहा गया है, जिसमें सद्–असद् का विवेक नहीं होता है। मूढ़ को ही कहीं–कहीं बाल (न साम्परायः प्रतिभाति बालः)[1] एवं मन्द (प्रेयो मन्दो योगक्षेमाद् वृणीते) [2] शब्द का भी प्रयोग किया गया है। कठोपनिषद् के आये श्रेयस्–प्रेयस् मार्ग के विवेचन में मूढ़ अथवा मन्द मति वाले को श्रेयस अर्थात् कल्याण के मार्ग को छोड़कर प्रेयस अर्थात् ऐन्द्रिय भोगों के मार्ग को अपनाने वाला कहा गया है। ऐसे मूढ़ व्यक्ति श्रेयस के दूरगामी, अदृष्ट फल पर विश्वास न करके तात्कालिक क्षणभंगुर भोगसाधनों की कामना करते हैं। उनकी सोच लौकिक भोगपदार्थों के योगक्षेम– अर्थात् अप्राप्त भोगों को पाने की लालसा और पूर्वप्राप्त भोगों को सुरक्षित रखने की चिन्ता तक सीमित रहती है। अज्ञानता के अन्धकार में पड़े मूढ़ जनों की तुलना ऐसे अन्धें से की गई है, जिन्हें दूसरे अन्धें के द्वारा रास्ता दिखाया जाता है।[3] ऐसी स्थिति में अन्धा व्यक्ति अपने गन्तव्य तक न पहुँच कर इधर–उधर भटकता रहता है और कष्ट पाता है। ठीक इसी प्रकार मूढ़ व्यक्ति भी अपने अविवेक के चलते कल्याण के मार्ग से भटक कर क्षणभंगुर भोगों की आसक्ति में फंसकर अपार कष्ट पाता है।

अविद्यायामन्तरे वर्तमानाः स्वयं धीराः पण्डितम्मन्यमानाः
दन्द्रम्यमाणाः परियन्ति मूढ़ा अन्धेनैव नीयमाना यथान्धः।।

ऐसा मूढ़ व्यक्ति इस इन्द्रियगोचर प्रत्यक्ष जगत को ही एक मात्र सत्य समझता है, मृत्यु के परे वह सबकुछ नष्टप्राय समझता है उसे लगता है यहाँ जितने कालार्वाध तक जीवन है उतने में विषय सुख भोग लिया जाय उतने में बुद्धिमानी है। परलोक किसने देखा है, यह लोगों की कल्पनामात्र है।[4] इस प्रकार के विचार हमें चार्वाक मतावलंबियों के प्राप्त होते हैं, जिनके अनुसार हम जब तक जीवित है हमे सुखपूर्वक जीना चाहिए।

यावज्जीवेत्, सुखं जीवेत,
ऋणं कृत्वां घृतं पिबेत्।

निरन्तर बाह्य जगत् के विषय–भोगों का अनुसरण करने वाले मूढ़–जन मृत्यु के जाल में पड़ते हैं।[5] ये मूढ़जन कामनाओं के वशीभूत होकर यज्ञादिकर्म को ही कल्याण का मार्ग समझते हैं और अपने वास्तविक कल्याण के लिए कोई प्रयत्न नहीं करते।[6] वस्तुतः विषयों की आसाक्ति के कारण उनकी दृष्टि कल्याण के मार्ग की ओर नहीं जाती।अब हम उपनिषदों की दृष्टि से धीर पुरुष के लक्षण पर विचार करते हैं। धीर शब्द का सामान्य अर्थ हम धैर्यवान लगाते हैं किन्तु उपनिषदों मे धीर का तात्पर्य स्थितप्रज्ञ विवेकी एवं ज्ञानवान व्यक्ति से है। किसी भी स्थिति में शोक न करना धीर पुरुष का सर्व सामान्य लक्षण बताया गया है– 'धीरो न शोचति'।

ये धीर पुरुष होते हैं, जो नीर–क्षीर की भाँति मिले हुए श्रेय और प्रेय को अलग करने में समर्थ होते है तथा धीर क्षणिक इन्द्रिय–भोगों वाले प्रेय की तुलना में कल्याण–पथ अर्थात् श्रेय को चुनते हैं।[7]

यमराज ने एकमात्रा तत्त्ववान की इच्छा रखते हुए, स्वर्ग–प्राप्ति के वरदान को ठुकरा देने वाले नविकेता को धीर की संज्ञा प्रदान की।[8] (स्तोतममहदुरुगायं प्रतिष्ठां दृष्टवा धृत्या धीरो नचिकेताऽत्यस्राक्षीः), धीर पुरुष अध्यात्मयोग के अभ्यास के द्वारा सतत् परम सत्ता के स्वरूप का मनन करता हुआ हर्ष और शोक के परे हो जाता है।

सामान्य मनुष्यों के दृष्टि का क्षेत्र बाहर की ओर होता है क्योंकि इन्द्रियों के द्वार स्वतः बर्हिगामी होते हैं। यह धीर व्यक्ति ही होता है जो अपनी इन्दियों को बाह्य विषयों से लौटाकर अपनी अन्तःप्रज्ञारूपी नेत्रों के द्वारा अन्तरात्मा का ही दर्शन करता रहता है।[9] जिस ज्ञानशक्ति के द्वारा धीर व्यक्ति शब्द, रस, गन्ध, स्पर्श एवं रूपादि विषयों का अनुभव करता है, उन्हीं की दी हुई शक्ति से इनकी क्षणभंगुरता देखकर वह यह भी समझ सकता है कि इन सबमें ऐसी कौन वस्तु है, जो यहाँ शेष रहेगी। इस प्रकार धीर वह है, जो समस्त अनित्य वस्तुओं के अनित्यता को जानते हुए नित्य वस्तु चिदात्मा के स्वरूप साक्षात्कार के लिए प्रयत्नशील हो। धीर व्यक्ति यह स्पष्ट देख पाता है कि एक ही अखण्ड सत्ता अनेक रूपों में प्रतीत होती है, और ऐसा देखता हुआ वह शाश्वत सुख को पाने वाला बन जाता है।[10]

एको वशी सर्वभूतान्तरात्मा
एकं रूपं बहुधा यः करोति
तमात्मस्थं येऽनुपश्यन्ति धीरा
स्तेषां सुखं शाश्वतं नेतरेषाम्।

भोगों की चाह रहने वाला सामान्य जीव वहाँ–वहाँ जन्म लेता हैं, जहाँ–जहाँ उन भोगों की प्राप्ति संभव होती है, किन्तु उससे विपरीत जो धीर है, वह समस्त कामनाओं का त्याग कर देता है, और पर ब्रह्म की उपासना में रत रहता है।[11] ऐसा धीर व्यक्ति किसी भी प्रकार आत्म–बल से रहित नहीं होता और न ही प्रमादी होता है, वह परम तत्व का ज्ञान प्राप्त करने के लिए तर्क का आश्रय नहीं लेता है, वह अच्छी प्रकार से जानता है कि उस इन्द्रियातीत सत्ता का ज्ञान तर्कबद्धि के द्वारा नहीं हो सकता। ऐसे ज्ञानतृप्त, वीतराग एवं प्रशान्त धीर की चेतना सर्वव्यापी ब्रह्म से ही आविष्ट रहती है।

इस प्रकार धीर एवं मूढ़ के रूप में जो व्यक्तित्व प्रकार उपनिषदों में वर्णित है वह इहलौकिक एवं जागतिक न होकर पारमार्थिक एवं आध्यात्मिक हैं। उपनिषदों के द्वारा प्रतिपादित मूढ़ की कोटि साधारण मूर्ख एवं मन्द–बुद्धि की कोटि नहीं है, जिनकी भी बुद्धि सांसारिक विषयों तक सीमित है वे सभी इसके अन्तर्गत आते हैं। दूसरी ओर उपनिषदों की दृष्टि में जो धीर हैं वे वस्तुतः अत्यन्त विरले एवं विलक्षण तत्वजिज्ञासु व्यक्ति हैं जिनका मन सांसारिकता में बिल्कुल ही नहीं रमता।

उपरोक्त विश्लेषण से यह स्पष्ट हो जाता है कि इस ढंग का व्यक्तित्व प्रकार एक आदर्श की स्थिति है एवं सर्वसामान्य यथार्थ की व्याख्या इससे नहीं होती किन्तु ऐसा होने पर भी यह आदर्श दुःखी एवं बन्धनग्रस्त मनुष्यता के लिए प्रकाश स्तम्भ की भाँति है।

सन्दर्भ

1. कठोपनिषद् 1,2,6
2. कठोपनिषद् 1,2,2
3. कठोपनिषद् 1,2,5
4. कठोपनिषद् 1,2,6
5. कठोपनिषद् 2,1,2
6. मुण्डब्रेफपनिषद्, 1,2,7
7. कठोपनिषद् 1,2,2
8. कठोपनिषद् 1,2,11
9. कठोपनिषद् 2,2,12
10. कठोपनिषद् 1,2,6
11. मुण्डकोपनिषद 3,2,1